प्रकाशित: जनवरी 2018 को दैनिक जागरण में प्रकाशित –

हिंदू परंपरा में एक वर्ण है शूद्र, चार वर्णों में जिनका था सम्मानजनक स्थान

शंकर शरण

स्वतंत्र भारत में पहले तो हमने अपने तमाम शास्त्रों को शिक्षा से बाहर कर दिया, फिर उस पर जिस किसी की नासमझी या राजनीति-प्रेरित निंदा से प्रभावित होते रहे। इसका एक उदाहरण मनुस्मृति की नियमित भर्त्सना है। आज के नजरिये से किसी पुरानी पुस्तक में कोई नापसंद बात मिलने पर उसे अपमानित करना गलत है। आज जिन अनेक ग्रंथों को सम्मान दिया जाता है उनमें अनबिलीवर, पगान या दूसरे धर्म-विश्वासियों के लिए अत्यंत अपमानजनक बातें लिखी मिलती हैं। क्या इस आधार पर किसी को इन ग्रंथों को जलाने का अधिकार है? बिल्कुल नहीं। तब फिर वही व्यवहार मनुस्मृति के साथ क्यों नहीं किया जाता? जिसमें किसी के लिए भी वैसा कुछ लिखा भी नहीं है और इसे कोई स्वयं यह देख सकता है।

मनुस्मृति के बारे में

मनुस्मृति के 12 अध्याय में कुल 1214 श्लोक हैं। इनमें क्रमश: सृष्टि, दर्शन, धर्म-चिंतन, सामान्य जीवन के विधि-विधान, गृहस्थ-जीवन के नियम, स्त्री, विवाह, राज्य-राजा संबंधी परामर्श, वैश्य-शूद्र संबंधी कर्तव्य, प्रायश्चित, कर्मफल विधान, मोक्ष और परमात्मा पर चिंतन है। कुछ प्रकाशनों में मनुस्मृति में इसके दोगुने से भी अधिक श्लोक मिलते हैं, किंतु इनमें कई स्पष्टत: प्रक्षिप्त माने गए हैं यानी जो मूल श्लोकों से टकराते हैं।

मूल मनुस्मृति के नहीं आधे से अधिक श्लोक

आधिकारिक विद्वानों के अनुसार अनेक प्रकाशनों में आधे से अधिक श्लोक मूल मनुस्मृति के नहीं हैं। इसके अलावा यह भी नहीं भूलना चाहिए कि स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद की तमाम शिक्षाओं, सेवा और जीवन-कर्म का आधार वेद, उपनिषद के साथ मनुस्मृति भी है। अर्थात संपूर्ण भारतीय समाज की जो सेवा इन महापुरुषों ने की और जिसके लिए देश उन्हें कृतज्ञता से नित्य स्मरण करता है उसकी प्रेरणा उन्हें वेदांत और मनुस्मृति से मिली। आखिर विवेकानंद ने मनुस्मृति को अधिक समझा था या आज के हमारे नासमझ एक्टिविस्टों ने जो समाज को तोड़ने, लड़ाने के लिए मनुस्मृति पर कालिख पोतते रहते हैं? किसी वाक्य या शब्द को पुस्तक के संदर्भ से अलगकर और बिना अर्थ समझे, निंदा करना नासमझी या धूर्तता ही है।

चार वर्णों में एक सवर्ण थे शूद्र

किसी संज्ञा से आज के किसी समूह को मनमाने जोड़ दिया जाता है। फिर उससे जुड़ी किसी खास बात को निंदा हेतु चुन लिया जाता है। जैसे, 'शूद्र' का अर्थ और स्थिति। हिंदू परंपरा में शूद्र एक वर्ण है, जन्म-जाति नहीं। वर्ण भी विशिष्ट कार्यों से जुड़े हैं, जन्म से नहीं। तब भी शूद्र की स्थिति हीन नहीं बताई गई थी। शूद्र भी चार वर्णों में एक सवर्ण थे, जिन का सम्मानपूर्ण स्थान था।

शूद्रों की स्थिति सम्मानजनक थी

कवि निराला ने 'तुलसीदास' में लिखा है कि भारत में शूद्रों की स्थिति पहले सम्मानजनक थी। वह इस्लामी शासकों के काल में ही हीन हुई। निराला के शब्दों में, 'रक्खा उन पर गुरु-भार, विषम/जो पहला पद, अब मद-विष-सम'। निराला ने इसका अर्थ बताया है, सेवा के लिए जो पहले शूद्रों को पद मिला वह सम्मानहीन हो उनके

लिए विष-तुल्य हो गया। भारत में कभी भी महान, ज्ञानी, ऋषि, राजा आदि होने का किसी की जन्म-जाति का कोई अनिवार्य संबध नहीं रहा। स्वामी विवेकानंद इसके हाल के उदाहरण हैं। वे शूद्र कहलाने वाली जाति में पैदा हुए थे।

संन्यासी बनने का क्या अधिकार

स्वामी विवेकानंद के अपने शब्दों में, 'मुझे चुनौती दी गई कि एक शूद्र को संन्यासी बनने का क्या अधिकार है? इसका मैं उत्तर देता हूं। मेरी जाति के लोगों ने दूसरी सेवाओं के अतिरिक्त आधे भारतवर्ष पर कई शताब्दियों तक राज्य किया है। यदि मेरी जाति को गिना न जाएगा तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या बचेगा? केवल बंगाल में मेरी जाति ने महानतम दार्शनिक, कवि, इतिहासकार, पुरातात्विक, धर्मगुरु दिए। मेरे रक्त ने भारत को महानतम वैज्ञानिक दिए। इसलिए इससे मुझे कोई चोट नहीं लगती जब वे मुझे शूद्र कहते हैं।' (9 फरवरी 1897, मद्रास)

सदैव दबे-कुचले नहीं थे शूद्र

विवेकानंद की इन पंक्तियों से शूद्र के नाम पर चलने वाले सारे बौद्धिक दुष्प्रचार की वास्तविकता देखी जा सकती है। सर्वप्रथम, यह प्रमाणित होता है कि सौ वर्ष पहले जिन्हें शूद्र माना जाता था उन्हें अब नहीं माना जाता। दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि शूद्र कोई सदैव दबे-कुचले, दीन-हीन- पीड़ित नहीं थे, क्योंकि स्वामी विवेकानंद बता रहे हैं कि शूद्रों ने आधे भारतवर्ष पर सदियों तक राज किया। इससे तीसरा तथ्य भी दिखता है कि चूंकि वे राजकीय सत्ता पर काबिज रहे, अत: शूद्र वर्ण या शब्द का सैद्धांतिक-व्यवहारिक अर्थ केवल शोषित-पीड़ित नहीं हो सकता।

जाति शब्द के असंख्य अर्थ पौराणिक विवरणों से लेकर आज तक इसके असंख्य उदाहरण हैं। इसलिए मनुस्मृति का 'शूद्र' आज का फलां समूह या जाति है, यह मनमाना निष्कर्ष है। इसमें अज्ञान या राजनीतिक धूर्तता ही है। भारतीय परंपरा में जाति शब्द के ही असंख्य अर्थ हैं। आर्य- जाति, स्त्री-जाति, हिंदू-जाति आदि प्रयोग सदैव चलते रहे हैं। फिर यह 'शिड्यूल्ड कास्ट्स' वाली सूची तो सौ साल पहले अंग्रेजों की बनाई हुई है। भारतीय साहित्य या न्याय में कहीं कोई सूची न थी। इसलिए नहीं थी कि कोई जन्मना- जाति सदा के लिए शासक-शासित या ऊंच-नीच नहीं होती थी। यह सब अनदेखा करके अतिरंजित या मनगढ़ंत प्रचार चलाना समाज विरोधी काम है। अच्छा हो हम अपने सच्चे ज्ञानियों के जीवन, कर्म और शिक्षाओं पर ध्यान दें।